जैन ज्योतिष एवं ज्योतिषशास्त्री

☐ लक्ष्मीचन्द्र जैन
गणित प्राध्यापक, गवर्नमेंट कॉलेज, खंडवा (म० प्र०)

जैन श्रुति में ज्योतिष ज्ञान का प्रारम्भ कर्मभूमि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम सूर्य एवं चन्द्रमा के उदय होने पर प्रथम कुलकर द्वारा मनुष्यों की उत्कंठा दूर करने हेतु होना प्रतीत होता है। किन्तु युग तथा कल्पकालों की अवधारणाएँ उक्त ज्ञान की परम्परा को सुदूर अनादि की ओर इंगित करती हैं। आज के सांख्यिकी सिद्धान्त पर आधारित ज्योतिष की खोजें युग सिद्धान्त को पुष्ट कर रही हैं। रोजर्स बिलियर्ड द्वारा प्रस्तुत फ्रेंच भाषा के शोध-निबन्ध में इसका विश्लेषण किया गया है।[१]

ऐसा प्रतीत होता है कि वर्द्धमान महावीर युग में विद्यानुवाद पूर्व तथा परिकर्मों का संकलन अथवा निर्माण बड़े पैमाने पर हुआ होगा और इस कार्य में बेबिलन तथा सुमेरु की हजारों वर्ष प्राचीन अभिलेखबद्ध सामग्री एक स्रोत रूप में उपयोगी सिद्ध हुई होगी। आधुनिक पामीर एवं रूस के दक्षिणी कोरों के निवासी भारतीयों के सम्पर्क में जो इस ज्ञान का आदान-प्रदान करते रहे वह इतिहास की वस्तु नहीं वरन् मैत्री के अंचल का आगार बन कर रह गयी।[२]

गणित ज्योतिष का सम्पूर्ण रूप निखारने वाले भारतीय ग्रंथ आर्यभट्ट से पूर्व के अनुपलब्ध हैं। केवल जैन साहित्य के करणानुयोग सम्बन्धी परम्परा से चले आये ग्रंथों में यत्र-तत्र कुछ ऐसे तत्त्व बिखरे प्राप्त हो जाते हैं जिनसे ऐसे सूत्रों का बोध हो जाता है जो जैन ज्योतिष के अतुलनीय वैभव के परिचायक सिद्ध होते हैं। वे सर्वथा मौलिक प्रतीत होते हैं और उन कड़ियों को जोड़ते प्रतीत होते हैं जिनके टूट जाने से ज्योतिष इतिहास अंधकार में डूबता चला गया। इस सम्बन्ध में कुछ शोध लेख प्रकाशित हो चुके हैं और शोध-प्रबन्ध निर्मित किये जा रहे हैं जिनके आधार पर भविष्य इतिहास के अनेक पहलू जैन आचार्यों के अभूतपूर्व अंशदानों को प्रकाश में लाने का उद्देश्य पूरा कर सकेंगे।[3]

---

१ Roger Billiard, L' Astronomie Indienne, Paris, 1971.

२ देखिये—
Neugebauer, O., The Exact Science in Antiquity, Providence, 1957.

३ देखिये—
(अ) Das, S. R., The Jaina Calendar, The Jaina Antiquary, Arrah, Vol. 3. No. ii, Sept. 1973, pp. 31-36.
(ब) Agrawal, M. B., Part III, Jaina Jyotisa, Thesis on "Ganita evam Jyotisa ke Vikasa men Jainacaryon Ka Yogadana." University of Agra, August, 1972, pp. 314-341.
(स) Jain L. C. Tiloyapannatti ka Ganita, Jivaraj Granthmala, Sholapur, 1958, 1-109.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत ग्रंथों के निर्माण एवं निर्माणकर्त्ताओं के काल निर्णय की समस्या अत्यधिक गम्भीर है तथापि परम्परा का काल निर्णय कठिन वस्तु नहीं है। तिलोयपण्णत्ती तथा त्रिलोकसार विषयक ज्योतिष अधिकारों पर लेखक द्वारा प्रकाश डाला जा चुका है।[४] इतर ग्रंथों सम्बन्धी यह सामग्री उनकी यथायोग्य रूप में पूरक सिद्ध हो सकेगी।

ज्योतिष ज्ञान हेतु काल विषयक सामग्री वीरसेनाचार्य कृत धवला में उपलब्ध है जो पृष्ठ ३१३ से अगले पृष्ठों में सुविस्तृतरूप में वर्णित है। यह कालानुयोगद्वार से अवतरित है।[५] (धवला, पु० ४)। समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली तथा दिन, रात्रि, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर, इत्यादि काल को जीव, पुद्गल एवं धर्मादिक द्रव्यों के परिवर्तनाधीन माना है। यहाँ परमाणु से लेकर सूर्य चन्द्रादि के व्यवहार सम्मिलित हैं।

उपर्युक्त के सिवाय युग, पूर्व, पर्व, पल्योपम, सागरोपम तथा सूर्य के अनन्तानन्त प्रक्षेपों का भी वर्णन महत्त्वपूर्ण है। (तिलोयपण्णत्ती १, २)। पन्द्रह मुहूर्तों के नाम पूर्व परम्परागत प्रतीत होते हैं : रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, दैत्य, वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित, रोहण, बल, विजय, नैऋत्य, वारुण, अर्यमन् और भाग्य। ये मुहूर्त दिन सम्बन्धी हैं। रात्रि सम्बन्धी मुहूर्त ये हैं : सावित्र, धुर्य, दात्रक, यम, वायु, हुताशन, भानु, वैजयन्त, सिद्धार्थ, सिद्धसेन, विक्षोभ, योग्य, पुष्पदन्त, सुगन्धर्व तथा अरुण। कभी दिन को छह मुहूर्त जाते हैं और कदाचित् रात्रि में छह मुहूर्त जाते हैं (धवला, पु० ४, पृ० ३१६)। नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा तिथियाँ होती हैं। इन पंच दिवसों से पंचदश दिवस वाला पक्ष बनता है। इन तिथियों के देवता क्रम से चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं। नन्दा आदि तिथियों का नाम प्रतिपदा से प्रारम्भ किया जाता है। द्वितीया—भद्रा, तृतीया—जया है, इत्यादि यह चक्र चलता रहता है। इनका आधार चन्द्र स्पष्ट प्रतीत होता है। पाँच वर्षों के युग के चक्र कल्प तक ले जाते हैं। काल का आधार मनुष्यक्षेत्र सम्बन्धी सूर्यमण्डल किया गया है (वही, पृ० ३२०)। अतीत, अनागत और वर्तमान रूप काल के अतिरिक्त गुणस्थिति काल, भवस्थिति काल, कर्मस्थिति काल, कायस्थिति काल, उपपाद काल और भावस्थिति काल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और आधुनिक विज्ञान के काल विषयक ज्ञान में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते हैं (वही, पृ० ३२२)। द्रव्य (कर्म पुद्गल एवं नोकर्म पुद्गल) परिवर्तन, क्षेत्र परिवर्तन, काल परिवर्तन, भव परिवर्तन और भाव परिवर्तन काल आधुनिक काल अवधारणाओं में क्रान्ति

(द) नाहटा, अ० चं०, जैन ज्योतिष और वैद्यक ग्रंथ, श्री जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा, ४.२, सितम्बर १९३७, पृ० ११०-११८

(इ) शास्त्री, ने० चं०, ग्रीकपूर्व जैन ज्योतिष विचारधारा, ब्र० चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, आरा, १९५४, पृ० ४६२-४६६

(फ) शास्त्री, ने० चं०, भारतीय ज्योतिष का पोषक जैन ज्योतिष, वर्णी अभिनन्दन ग्रंथ, सागर, १९६२, पृ० ४७८-४८४

(क) जैन, ने० चं०, जैन ज्योतिष साहित्य, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रंथ, कलकत्ता, खण्ड ii, १९६१, पृ० २१०-२२१

४ तिलोयपण्णत्ती—यतिवृषभ, भाग (१) १९४३, भाग (२) १९५१; त्रिलोकसार—नेमिचन्द्र, बम्बई (१९२०) सं०, बम्बई, (१९१८) हिन्दी; जम्बूद्वीप-पण्णत्तिसंगहो—पउमणंदि, शोलापुर, १९५८; सूरपण्णत्ति, सूरत, १९१९; जम्बूद्दीवपण्णत्ति, बम्बई १९२०, गणितानुयोग, सांडेराव, १९७१; इत्यादि ग्रंथ अवलोकनीय हैं।

५ पुष्पदंत एवं भूतबलि, षट्खण्डागम, धवला टीका (वीरसेनाचार्य कृत) पु० ४, अमरावती, १९४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ला सकते हैं। ये काम्प्यूटर के कार्य को अधिक विस्तृत कर सकते हैं। आबाधा काल सम्बन्धी सामग्री नाभि-विज्ञान के टाइम-लेग सम्बन्धी ज्ञान को प्रस्फुटित कर सकती है।

प्रश्नव्याकरण (१०·५) में समस्त नक्षत्रों को कुल, उपकुल और कुलोपकुलों में विभाजित किया गया है। यह प्रणाली महत्त्वपूर्ण है। कुल संज्ञा धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल और उत्तराषाढ़ा को दी गयी है। उपकुल संज्ञा वाले श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा और पूर्वाषाढ़ा हैं। कुलोपकुल संज्ञक अभिजित्, शतभिष, आर्द्रा एवं अनुराधा हैं। यह विभाजन पूर्णमासी को होने वाले नक्षत्रों के आधार पर किया गया प्रतीत होता है। प्रत्येक मास की पूर्णमासी को उस मास का प्रथम नक्षत्र कुल संज्ञक, दूसरा उपकुल संज्ञक और तीसरा कुलोपकुल संज्ञक होता है। श्रावण (धनिष्ठा, श्रवण और अभिजित), भाद्रपद (उत्तराभाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद, शतभिष), आश्विन (अश्विनी, रेवती), कार्तिक (कृत्तिका, भरणी), अगहन या मार्गशीर्ष (मृगशिरा, रोहिणी), पौष (पुष्य, पुनर्वसु, आर्द्रा), माघ (मघा, आश्लेषा), फाल्गुन (उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाफाल्गुनी), चैत्र (चित्रा, हस्त), वैशाख (विशाखा, स्वाति), ज्येष्ठ (ज्येष्ठा, मूल, अनुराधा), आसाढ़ (उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा) ये १२ माह निर्मित हुए। ध्यान रहे कि नक्षत्र पद्धति विश्व में भारतीय अंशदान के रूप में अप्रतिम है। इन १२ मासों के आधार पर १२ राशियों का निर्माण कठिन नहीं रहा होगा। जैन ज्योतिष में १०९८०० गगनखण्डों के दोनों ओर वास्तविक तथा कल्पित सूर्य चन्द्र, जम्बूद्वीप में स्थापित कर, प्रक्षेपों में उनकी गलियों का निर्धारण अद्वितीय है। सूर्य का ३० मुहूर्त विषयक गमन १८३० गगनखण्डों में प्रति-मुहूर्त तो सरल है। किन्तु त्रिलोक-सार में नवीन काल्पनिक सूर्य को ऋतुराहु रूप में लेकर उसका गमन १८२९ $\frac{११}{१२}$ गगनखण्ड प्रति-मुहूर्त लेकर जो खोज हुई होगी वह राशि सम्बन्धी विश्व खोज को जैन खोज निरूपित करती है। इनके आधार पर फलित ज्योतिष के विकास की बेबिलन, ग्रीक परम्परा ईस्वी पूर्व ३०० से ३०० पश्चात् दृष्टिगत होती है।[६]

समवायाङ्ग (स० ७, सू० ५) के नक्षत्रों की ताराएँ और उनके दिशाद्वार का वर्णन मिलता है। यथा : पूर्वद्वार (कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा); दक्षिणद्वार (मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा); पश्चिमद्वार (अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित् और श्रवण); उत्तरद्वार (धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रापद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी) चार द्वार हैं। इनके सिवाय ज्योतिष विषयक सन्दर्भ १·६, २·४, ३·२, ४·३ तथा ५·९ में उपलब्ध हैं। ठाणांग में चन्द्रमा के साथ स्पर्शयोग करने वाले नक्षत्रों में कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा हैं। इस योग का फल तिथियों के अनुसार विभिन्न प्रकार का होता है। नक्षत्रों की अन्य संज्ञाएँ तथा विभिन्न दिशाओं से चन्द्रमा के साथ योग करने वाले नक्षत्रों के नाम और उनके फल विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। इसमें ८८ ग्रहों के नाम भी उपलब्ध हैं जो तिलोयपण्णत्ती की सामग्री से तुलनीय हैं। प्रश्नव्याकरण में नौ ग्रहों का वर्णन है पर गमन सम्बन्धी विवरण यहाँ भी नष्ट गया है। (ठाणांग; पृ० ९८-१००, समवायांग, स० ८८·१)। समवायांग आदि सभी ग्रंथों में ग्रहण का कारण पर्वराहु चन्द्र के लिए और केतु सूर्यग्रहण का कारण माना गया है (समवायांग, स० १५·३)। निश्चित ही, राहु एवं केतु काल्पनिक गणितीय साधन की वस्तु रहे हैं जैसा कि ऋतुराहु के सम्बन्ध में पूर्वोल्लेख है। दिनवृद्धि और दिनह्रास सम्बन्धी सामग्री बेबिलन और सुमेरुवर्ती स्थलों के लिए प्रयुक्त मानी गयी है जो

६ Jain, L. C., The Kinematic Motion of Astral Real and Counter Bodies in Trilokasara, I. J. H. S., 11·1, 1976, pp. 58-74.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवायांग तथा अन्य प्राकृत करणानुयोग सम्बन्धी ग्रंथों में उपलब्ध है। (वही, स० ८८·४)। इस प्रकार जैनागम में जो विवरण मिलता है वह गगनखण्ड तथा योजन के कोणीय माप तथा दूरीय माप के सम्बन्ध में गणितीयरूपेण प्रक्षिप्त है तथा रहस्यमय होते हुए सर्वथा यकताँ है। फलित ज्योतिष में तिथि, नक्षत्र, योग, करण, वार, समयशुद्धि, दिनशुद्धि की चर्चाएँ किस प्रकार विकसित हुई होंगी—इस हेतु अनेक ग्रंथों का अनुवाद कार्य लाभदायक सिद्ध हो सकेगा। इस ओर अभी ध्यान नहीं गया है तथा शोधकेन्द्रों में ज्योतिष एवं गणित का संचालन अब अत्यन्त आवश्यक है।

प्रायः ई० पू० ३०० से ई० प० ६०० (आदिकाल) सम्बन्धी रचनाओं में तिलोय-पण्णत्ती, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, अंगविज्जा, लोकविजययन्त्र, एवं ज्योतिषकरण्डक[७] उल्लेखनीय हैं। इन सभी में पंचवर्षात्मक युग मानकर तिथि, नक्षत्रादि का साधन किया गया है। यह युग श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से, जब चन्द्रमा अभिजित्त नक्षत्र पर रहता है, प्रारम्भ होता है। सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्य के गमनमार्ग, परिवार, आयु के विवरण के साथ पंचवर्षात्मक युग के अयनों के नक्षत्र, तिथि और मास का विवरण दिया गया है। चन्द्रप्रज्ञप्ति में सूर्य की प्रतिदिन की योजनात्मक गति निकाली गयी है, तथा उत्तरायण और दक्षिणायन की वीथियों का अलग-अलग विस्तार निकाल कर सूर्य चन्द्र की गतियाँ निश्चित की गयी हैं। यही विवरण तिलोयपण्णत्ती में भी मिलता है। चन्द्रप्रज्ञप्ति में चन्द्र और सूर्य का संस्थान और तापक्षेत्र का संस्थान तिलोयपण्णत्ती सदृश वर्णित है। सोलहों वीथियों में चन्द्रमा का आकार समचतुस्र गोल बतलाया गया है। उन्हें युगारंभ में समचतुरस्र और उदय होने पर वर्तुल बतलाया है। ये अर्धगोलीय हैं। यह दृष्टिगत प्रक्षेप है। वेदांग ज्योतिष की अयन पद्धति भिन्न है।

छायासाधन विधि से दिनमान निकालने की विधि का वर्णन चन्द्रप्रज्ञप्ति (प्र० ९·५) में मिलता है। अर्धपुरुष प्रमाण छाया होने पर दिनमान का तृतीयांश व्यतीत हो जाता है। दोपहर के पूर्व यही छायाप्रमाण $\frac{२}{३}$ दिन अवशेष और दोपहर बाद $\frac{१}{३}$ दिन अवशेष बतलाया है। पुरुष प्रमाण छाया होने पर $\frac{३}{४}$ दिन शेष, तथा डेढ़ पुरुष प्रमाण छाया $\frac{४}{५}$ दिन शेष बतलाती है। पुरुष छाया के सिवाय गोल, त्रिकोण, लम्बी-चौकोर आदि वस्तुओं की छाया से दिनमान को निकाला जाता है। यह त्रिकोणमिति सम्बन्धी आकलन है। इसमें चन्द्रमा के साथ तीस मुहूर्त तक योग करने वाले नक्षत्र श्रवण, घनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढ़ा है। पैंतालीस मुहूर्त तक उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढ़ा योग करते हैं तथा पन्द्रह मुहूर्त तक का योग चन्द्र के साथ शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा करते हैं। चन्द्रप्रज्ञप्ति (१९वाँ प्राभृत) में चन्द्र को स्वप्रकाशित बतलाकर इसके घटने-बढ़ने का कारण स्पष्ट किया है। यह आधुनिक सिद्धान्त नहीं है। त्रिलोकसार में उसका गमन ही कलाओं का कारण बतलाया गया है। १८वाँ प्राभृत सूर्यादि ग्रहों की चित्रा पृथ्वीतल से ऊँचाई प्रदर्शित करता है जो उदग्र रूप से ली गई है।

ज्योतिषकरण्डक में अयन तथा नक्षत्र लग्न का विवरण है। यह लग्न निकालने की प्रणाली मौलिक है :

लग्गं च दक्खिणाय विसुवे सुवि अस्स उत्तरं अयणे।
लग्गं साई विसुवेसु पंचसु वि दक्खिणे अयणे॥

अर्थात् अश्विनी और स्वाति ये नक्षत्र विषुव लग्गं बताये गये है। जिस प्रकार नक्षत्रों के **विशेष विभाजन** समूहों को राशि कहा जा सकता है, उसी प्रकार नक्षत्रों की इस **विशिष्ट अवस्था** को लग्न बतलाया गया है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल सम्भवतः ई० पूर्व हो सकता है।

---

७ ज्योतिषकरंडक, सटीक, रतलाम, १९२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टांग निमित्त का संक्षिप्त विवरण अंगविज्जा का विषय है जो कुषाण-गुप्त युग के संधिकाल में निर्मित हुआ प्रतीत होता है। शरीर के लक्षणों से अथवा अन्य निमित्त या चिह्नों से शुभाशुभ फल का कथन है। इसमें साठ अध्याय हैं। ग्रह प्रवेश, यात्रारंभ, वस्त्र, यान, धान्य, चर्या चेष्टा, प्रवास, आदि का विवरण ४५वें अध्याय में मिलता है। ५२वें अध्याय में ज्योतिष पिंडों, इन्द्र धनुष, विद्युत काल आदि के निमित्तों के शुभाशुभ दिये गये हैं (अंगविज्जा पृ० २०६-२०६)।

लोकविजययन्त्र में ३० गाथाएँ हैं। लोक में सुभिक्ष, दुर्भिक्ष का भविष्य निर्णीत किया गया है। १४५ से १५३ तक के ध्रुवांकों द्वारा स्वस्थान का शुभाशुभ फल का वर्णन मिलता है।

गर्दभिल्ल के समकालीन, ईस्वी पूर्व में हुए कालकाचार्य का उल्लेख वराहमिहिर द्वारा वृहज्जातक में किया गया है। यह ग्रन्थ कालक संहिता है। निशीथचूर्णि तथा आवश्यकचूर्णि से भी इनके ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान पर प्रकाश पड़ता है। (भारतीय ज्योतिष, पृ० १०७)। उनके आस-पास हुए उमास्वामी (स्वाति), द्वारा तत्त्वार्थसूत्र में मेरु को 'ख' अक्ष मान कर प्रक्षेपों में सूर्य चन्द्रादि का गमन और चौथे अध्याय में ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक तथा तारों का उल्लेख किया है। चक्र सदृश ये नक्शे बेबिलन तथा अन्य देशों में २५०० ई० पूर्व से प्रचलित अभिलेखबद्ध सामग्री में पाये गये हैं।[८]

पूर्वमध्यकाल प्रायः ई० प० ६०० से १००० ई० तक माना जा सकता है। इस काल में ऋषिपुत्र, महावीर (ज्योतिषपटल ?), चन्द्रसेन, श्रीधर आदि ज्योतिषियों ने विशेष अंशदान दिये। अर्हच्चूडामणिसार ७४ प्राकृत गाथाओं में निबद्ध है। वराहमिहिर के भाई सम्भवतः भद्रबाहु द्वितीय की यह कृति प्रतीत होती है (डा० नेमिचन्द्र, जैन ज्योतिष साहित्य, आ० भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, १९६१, पृ० २१०-२२१)। सारांश में फलित इस प्रकार वर्णित है :

आलिंगित संज्ञक स्वर व्यंजन अ, इ, ए, ओ; क, च, ट, त, प, य, श, ग, ज, ड, द, ब, ल, स (सुभंग, उत्तर, संकट) इतर नाम हैं।

अभिधूमित स्वर व्यंजन आ, ई, ऐ, औ; ख, छ, ठ, थ, फ, र, ष, घ, झ, ढ, ध, भ, व, (मध्य, उत्तराधर, विकट) इतर नाम हैं।

दग्ध संज्ञक स्वर व्यंजन : उ, ऊ, अं, अः, ङ, ञ, ण, न, म
इतर नाम (विकट, संकट, अधर, अशुभ) भी हैं।

कार्य सिद्धि सभी आलिंगित अक्षर होने पर होती है। प्रश्नाक्षर दग्ध होने पर कार्य सिद्धि नहीं होती। मिश्राक्षरों के शुभाशुभ फल, जय-पराजय, लाभालाभ, जीवन-मरण आदि के विवेचन भी दर्शनीय हैं।

यतियों के लिए करलक्खण छोटा ग्रन्थ पठनीय है।

सम्भवतः ऋषिपुत्र का प्रभाव वराहमिहिर पर पड़ा। ये गर्ग वंश में हुए। इनका एक निमित्तशास्त्र उपलब्ध है। एक संहिता का भी मदनरत्न नामक ग्रंथ में उल्लेख हैं। वृहत्संहिता की महोत्पली टीका में ऋषिपुत्र के उद्धरण मिलते हैं। दृष्ट, श्रवणित, उत्पात आदि द्वारा प्रकट निमित्तों से शुभाशुभ फल प्रकट किया गया है।

हरिभद्र की प्रायः ८८ रचनाओं का पता मुनि जिनविजय द्वारा लगाया गया है। इनकी प्रायः २६ रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। ये सम्भवतः आठवीं शती के ज्योतिष मर्मज्ञ थे। इन्होंने १४४०

---

८ Needham, J. & Wang, L., Science and Civilization in China, Vol. III, Cambridge, 1959, pp, 529, 546, 561, 562, 563, 566, 568 & 587. for Concept of Meru, see 531 (d) 563, 568 and 589.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण-ग्रंथ रचे हैं। जातकशास्त्र या होराशास्त्र विषयक इनका लग्न शुद्धि ग्रंथ प्राकृत में है। लग्न और ग्रहों के बल, द्वादश भाव आदि का विवरण उल्लेखनीय है।

महावीराचार्य के ज्योतिषपटल में सम्भवतः ग्रहों के चार क्षेत्र, सूर्य के मण्डल, नक्षत्र और ताराओं के संस्थान गति, स्थिति और संख्या आदि का विवरण हुआ प्रतीत होता है—ऐसा डा० नेमिचन्द्र ने लिखा है।

कल्याण वर्मा के पश्चात हुए चन्द्रसेन द्वारा केवलज्ञान होरा रचित हुआ। इसके प्रकरण सारावली से मिलते-जुलते हैं किन्तु इस पर कर्नाटक के ज्योतिष का प्रभाव दृष्टिगत होता है। यह संहिता विषयक ग्रंथ है जो ४००० श्लोकों में पूर्ण हुआ है।

मर्मज्ञ ज्योतिषियों में दशवीं शती के श्रीधराचार्य हैं। ये कर्णाटक प्रान्त के थे जो प्रारम्भ में शैव थे और बाद में जैनधर्मानुयायी हो गये थे। ज्योतिर्ज्ञानविधि संस्कृत में तथा जातकतिलकादि रचनाएँ कन्नड़ में हैं। संस्कृत ग्रंथ में व्यवहारोपयोगी मुहूर्त है। संवत्सर, नक्षत्र, योग, करणादि के शुभाशुभ फल हैं। इसमें मासशेष, मासाधिपतिशेष और दिनशेष, दिनाधिपतिशेष की गणितीय प्रक्रियाएँ उल्लेखनीय हैं। जातक तिलक होरा या जातकशास्त्र है। इसमें लग्न, ग्रह, ग्रहयोग, जन्मकुण्डली सम्बन्धी फलादेश मिलता है।

एक अज्ञात लेखक की रचना प्रश्नशास्त्र सम्बन्धी चन्द्रोन्मीलन है। इसमें प्रश्नवर्णों का विभिन्न संज्ञाओं में विभाजन का उत्तर दिया गया है। केरलीय प्रश्नसंग्रह में चन्द्रोन्मीलन का खण्डन किया गया है। इसकी प्रणाली लोकप्रिय थी।

१००१ ई० से १७०० ईस्वी तक का उत्तर मध्यकाल है। इस काल में भारत में फलित ज्योतिष का अत्यधिक विकास हुआ। इस युग के सर्वप्रथम ज्योतिषी दुर्गदेव हैं। इनकी दो रचनाएँ रिट्ठ समुच्चय और अर्द्धकाण्ड प्रमुख हैं। इनका समय प्रायः १०३२ ई० है। रिट्ठसमुच्चय शौरसेनी प्राकृत की २६१ प्राकृत गाथाओं में रचित हुआ है। मृत्यु सम्बन्धी विविध निमित्तों का वर्णन इसमें है। अर्द्धकाण्ड में व्यावसायिक ग्रह-योग का विचार है। इसमें १४९ प्राकृत गाथाएँ हैं।

ईस्वी सन् १०४३ के लगभग का समय मल्लिसेन का है जिनका आय-सद्भाव ग्रंथ उपलब्ध है। इसमें १९५ आर्याएँ और एक गाथा है। इसमें ध्वज, धूम, सिंह, मण्डल, वृष, खर, गज और वायस इन आठों आयों के स्वरूप और फलदेश दिये गये हैं।

विक्रम संवत् की ११वीं शती के दिगम्बराचार्य दामनन्दी के शिष्य भट्टवोसरि हैं जिन्होंने २५ प्रकरण और ४१५ गाथाओं में आयज्ञान तिलक की रचना की है। इसमें भी आठ आयों द्वारा प्रश्नों के फलादेश का विस्तृत विवेचन है। प्रश्नशास्त्र के रूप में इसमें कार्य-अकार्य, हानि-लाभ, जय-पराजयादि का वर्णन है।

उदयप्रभदेव (१२२० ई०) द्वारा आरम्भ सिद्धि नामक व्यवहार चर्या पर ज्योतिष ग्रन्थ है जो मुहूर्त विषयक मुहूर्त चिन्तामणि जैसा है।

राजादित्य (११२० ई०) भी ज्योतिषी थे। इनके ग्रन्थ कन्नड़ में रचित हुए।

पद्मप्रभसूरि (वि० सं० १२९४) का प्रमुख ग्रन्थ भुवनदीपक या ग्रहभावप्रकाश है। इसमें ३६ द्वार प्रकरण हैं। इसमें कुल १७० श्लोक संस्कृत में हैं।

नरचन्द्र उपाध्याय (सं० १३२४) के विविध ग्रंथों में बेड़ा जातक वृत्ति, प्रश्नशतक, प्रश्न चतुर्विशतिका, जन्म समुद्र टीका, लग्न विचार और ज्योतिष प्रकाश हैं तथा उपलब्ध हैं। ज्ञान दीपिका तथा ज्योतिष प्रकाश (संहिता तथा जातक) महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठकवि (१३०० ई०) का अट्ठमत नामक ज्योतिष ग्रन्थ है। इसमें वर्षा, आकस्मिक लक्षण, वायु, गृह प्रवेश, भूकम्प, विद्युत, इन्द्रधनुष, ध्वनि, मेघादि के निमित्तों से फलादेश दिया गया है।

महेन्द्रसूरि (१२६२ शक) द्वारा यन्त्रराज रचित हुआ। इसमें नाड़ीवृत्त के धरातल में गोल पृष्ठ पर खींचे गये सभी वृत्तों का परिणमन कर ग्रहगणित किया गया है। इसकी टीका मलयेन्दु सूरि द्वारा रचित हुई। इसमें परमाक्रांति २३ अंश ३५ कला मानी गई है। इसमें पाँच अध्याय हैं जिनमें विभिन्न ग्रह गणितों का साधन किया गया है। इसमें पंचांग निर्माण करने की विधि भी दी गयी है।

सम्भवतः इसी युग की ८वीं ९वीं शती के बाद की एक रचना भद्रबाहु संहिता है जिसमें अष्टांग निमित्त का वर्णन हैं। इसमें २७ अध्यायों में निमित्त तथा संहिता के विषय है और ३०वें अध्याय में अरिष्टों का विवरण है। लोकोपयोग को ध्यान में रखते हुए इसकी रचना हुई। यह सांख्यिकी की आधुनिक प्रणाली का द्योतक है।

समन्तभद्र (१३वीं शती) की रचना केवलज्ञान प्रश्न चूड़ामणि है। इसमें अक्षरों को पाँच वर्गों में विभाजित कर प्रश्नकर्ता के वाक्य के आधार पर प्रश्नों के फलाफल का विचार किया गया है।

हेमप्रभ (सम्वत् १३०४) प्रायः चौदहवीं शती के प्रथम चरण में इन्होंने दो ग्रन्थ—त्रैलोक्य प्रकाश तथा मेघमाला रचे। त्रैलोक्यप्रकाश फलित ज्योतिष का ११६० श्लोक वाला ग्रन्थ है। मेघ माला में श्लोक संख्या १०० है। (प्रो० एच० डी० वेलकर—जैन ग्रन्थावली, पृ० ३५६)

रत्नशेखर (१५वीं शती) द्वारा १४४ गाथाओं वाला दिनशुद्धिदीपिका रचित हुआ। यह व्यवहार की दृष्टि से लिखा गया ग्रन्थ है।

ठक्करफेरु (१४वीं शताब्दी) के दो ग्रन्थ गणितसार और जोइससार हैं।

इस युग के अन्य ज्योतिषयों में हर्षकीर्ति (जन्मपत्र पद्धति), जिनवल्लभ (स्वप्न संहितका) जय विजय (शकुन दीपिका), पुण्यतिलक (ग्रहायु साधन), गर्गमुनि (पासावली), समुद्र कवि (सामुद्रिकशास्त्र), मानसागर (मानसागरी पद्धति), जिनसेन (निमित्तदीपक) आदि उल्लेखनीय हैं। अनेक ज्योतिष ग्रन्थों के कर्ताओं का पता नहीं चलता है।

१७०१ ई० से १९७६ ई० तक अर्वाचीन काल माना जा सकता है। इस युग के प्रमुख ज्योतिषी मेघविजयगणि (प्रायः वि० सं० १७३७) हैं। इनके मुख्य ग्रन्थ मेघ महोदय या वर्ष प्रबोध, उदय दीपिका, रमलशास्त्र और हस्त संजीवन हैं। वर्ष प्रबोध से ज्योतिष विषय की जानकारी मिलती है। हस्त संजीवन सामुद्रिकशास्त्र की महत्वपूर्ण कृति है।

इनके अतिरिक्त उभयकुशल (१८वीं शती पूर्वार्द्ध) के फलित ज्योतिष सम्बन्धी विवाह पटल और चमत्कार चिन्तामणि; लब्धचन्द्रगणि (वि० सं० १७५१) का व्यवहार ज्योतिष सम्बन्धी जन्मपत्री पद्धति; बाघती मुनि (वि० सं० १७८३) के तिथि सारणी ग्रन्थ आदि; यशस्वतसागर (वि०सं० १७६२) के व्यवहारोपयोगी यशोराजपद्धति उल्लेखनीय हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त विनयकुशल, हीरकुशल, मेघराज, जिनपाल, जयरत्न, सूरचन्द्र आदि अनेक ज्योतिषियों की रचनाएँ उपलब्ध हैं। अभी तक प्रायः ५०० जैन ज्योतिष ग्रन्थों का पता चला है। (वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४७८-४८४)

आशा है कि २५००वाँ वीर निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित समितियाँ जैन विद्या के केन्द्रों पर ज्योतिष एवं गणित की शोधों को प्रोत्साहित करने हेतु उपयुक्त प्राध्यापकों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियुक्ति का प्रावधान अपनी योजनाओं तथा विविध शर्तों में करने का प्रयत्न करेगी।[९] गणित जैन संस्कृति का अविच्छिन्न तथा आधारभूत पाया है जिस पर अनेक बौद्धिक तथा मौलिक रचनाएँ सम्भव हुईं तथा भारत की संस्कृति को सर्वोन्नत एवं उज्ज्वल रखा गया। जैनाचार्यों ने जो सामग्री निर्मित की वह मात्र इतिहास की वस्तु नहीं है वरन् उन आधारों को प्रस्तुत करती है, जिन पर नवीनतम खोजों के आगे बढ़ा जा सकता है। वे आधार सैद्धान्तिक हैं तथा प्रयोगों द्वारा अनुभूत-योग्य भी। सिद्धान्तों की रचना को सूक्ष्मतर बनाया जा सकता है—वह भी गणितीय आधार लेकर। अस्तु!

□□

९ इस वर्ष अक्टूबर में आर्यभट्ट ज्योतिषी का १५००वाँ जयन्ती समारोह मनाया जा रहा है। यतिवृषभ सम्भवतः इनके समकालीन थे। इस अवसर यतिवृषभ की स्मृति में शोध केन्द्रों पर पर जैन ज्योतिष के अध्ययन की बुनियादें डालना श्रेयस्कर होगा। कम से कम वैशाली, उज्जैन तथा पूना की जैन पीठों में यह अध्ययन प्रारम्भ कराना सम्भव हो सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म, दर्शन संस्कृति का
हुआ विवेचन रम्य।
ज्योतिष के गम्भीर ज्ञान का
किया बुद्धि से गम्य।
मुनिद्वय के अभिनन्दन ग्रन्थ का
खंड पाँचवा पूर्ण।
षष्ठ खंड में संत - सतीजन
का परिचय है तूर्ण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org